देव–गुरु–धर्म

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

देव–गुरु–धर्म त्रिकुटी है। ये हमारे जीवन को नई दिशा देते है। इनसे हमारा जीवन आध्यात्मिक आनन्द से भर जाता है। इससे हमें शान्ति प्राप्त होती है। इससे चिन्तन सकारात्मक होता है। यह प्रक्रिया मुक्ति की तरफ ले जाने वाली है। देव दिव्य गुणों से युक्त होते हैं। जैन धर्म में उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। अरिहन्त का अर्थ है शत्रुओं का नाश करने वाला। हमारे जीवन में दो प्रकार के शत्रु हैं। एक तो व्यावहारिक जीवन के शत्रु जिनसे धन दौलत, जमीन और सम्पदा के लिए युद्ध हुआ करता है। दूसरे प्रकार के शत्रु आन्तरिक शत्रु हैं। इनको दर्शन की भाषा में राग–द्वेष कहा जाता है। राग–द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आन्तरिक शत्रु हैं। ये बाहरी शत्रु से ज्यादा खतरनाक है। बाहरी शत्रु कुछ समय के लिए लाभ–हानि पहुंचा सकते हैं किन्तु आन्तरिक शत्रु आत्मा के गुणों का घात करते हैं। घाती और अघाती कर्म के रूप में ये शत्रु हमें नुकसान पहुंचाते हैं। इसी कारण आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकाशित नहीं हो पाता।

आत्मा में राग–द्वेष का जन्म होता है राग –द्वेष के कारण आत्मा मोहग्रस्त हो जाता है। मोह का अपना एक वट वृक्ष है। वट वृक्ष का बीज बहुत सूक्ष्म होता है, किन्तु वट वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसी प्रकार राग–द्वेष के बीज बहुत सूक्ष्म हैं किन्तु उसका परिणाम बहुत बृहद् है। राग–द्वेष के कारण ही आत्मा को भव भवान्तर में गमनागमन करना पड़ता है। क्रोध, मान, माया और लोभ चण्डाल चौकड़ी हैं। जन्म जन्मान्तर से ये चारों एक दूसरे से मिले हैं। एक के आ जाने पर ये चारों अपने आप आ जाते हैं। क्रोध के साथ अंहकार जुड़ा रहता है। क्रोध के साथ मान, मान के साथ माया, माया के साथ लोभ अपने आप आ जाता है। राग–द्वेष के परमाणुओं को समाप्त करने से ये चारों अपने आप समाप्त हो जाते हैं। राग–द्वेष की विष बेल जिसको घेर लेती है उसको नष्ट ही कर देती है।

बंधन का अर्थ है– परतंत्रता और मुक्ति का अर्थ है स्वतंत्रता। दार्शनिक दृष्टि से यदि हम चिंतन करे तो बंधन और मुक्ति जीव के लिए है। जिनसे कर्म बंधे या कर्मों का बंधना बन्ध है।

जो बंधे या जिसके द्वारा बांधा जाये या बन्धन मात्र को बन्ध कहते हैं। कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह बन्ध हैं। कर्म प्रदेशों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध है। मिथ्यादर्शनादि द्वारों से आए हुए कर्म पुद्गलों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध है। जैसे बेड़ी आदि से बंधा हुआ प्राणी परतन्त्र हो जाता है और इच्छानुसार देशादि में नहीं आ–जा सकता, उसी प्रकार कर्मबद्ध आत्मा परतन्त्र होकर अपना इष्ट विकास नहीं कर पाता। अनेक प्रकार के शरीर और मानस दुःखों से दुःखी होता है। राग–द्वेषादि के निमित्त से जीव के साथ पौद्गलिक कर्मों का बन्ध निरन्तर होता है।

जीव के भावों की विचित्रता के अनुसार वे कर्म भी विभिन्न प्रकार की फलदान शक्ति को लेकर आते हैं, इसी से वे विभिन्न स्वभाव या प्रकृति वाले होते हैं। प्रकृति का अर्थ स्वभाव है। जिस प्रकार नीम की क्या प्रकृति है? कडुआपन। गुड़ की क्या प्रकृति है? मीठापन। उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म की प्रकृति है अर्थ का ज्ञान न होना इत्यादि। जीव के प्रदेशों की उथल–पुथल को अस्थिति तथा उथल–पुथल न होने को स्थिति कहते हैं। जिसका जो स्वभाव है, उससे च्युत न होना स्थिति है। जिस प्रकार बकरी, गाय और भैंस आदि के दूध का माधुर्य स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है, उसी प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों का अर्थ का ज्ञान न होने देना आदि स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है।

विविध प्रकार के पाक अर्थात् फल देने की शक्ति का पड़ना ही अनुभव है। शुभाशुभ कर्म की निर्जरा के समय सुख–दुःख रूप फल देने की शक्ति वाला अनुभाग बन्ध है। कर्म रूप से परिणत पुद्गल स्कन्धों का परमाणुओं की जानकारी करके निश्चय करना प्रदेशबन्ध है। दो के बिना बन्ध नहीं होता। एक हाथ से ताली जिस प्रकार नहीं बज सकती, उसी प्रकार बन्ध तत्त्व भी एक के बीच में नहीं हो सकता। सांसारिक जो विषय–सामग्री है, वह और उसका जो भोक्ता है आत्मा ये दोनों संयोग होते ही बन्ध हो जाते हैं।

कर्म पुद्गलों के ग्रहण को बन्ध कहा जाता है। जीव के द्वारा कर्म पुद्गलों का ग्रहण क्षीर–नीर की भांति परस्पर आश्लेष होता है, उसे बन्ध कहा जाता है। वह प्रवाहरूप से अनादि और जो भिन्न–भिन्न कर्म बंधते रहते हैं, उनकी अपेक्षा सादि है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति ये सब कर्मों के आने के द्वार होने से आस्रव

हैं। आसव्र का निरोध करना ही संवर है। जिनसे कर्म रुकें, वह कर्मों का रुकना संवर है। नगर के द्वार अच्छी तरह बन्द हों, वह नगर शत्रुओं को अगम्य है।

गुरु ज्ञानदाता होता है। अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करके ज्ञानरूपी प्रकाश फैलाने वाला गुरु होता है। गुरु के प्रति आदर भाव होना चाहिए। गुरु शिष्य को ज्ञान देकर उसे पूर्ण मानव बनाता है। धर्म मनुष्य को धारण करने की शक्ति प्रदान करता है। किसी भी वस्तु का स्वाभाविक गुण उस वस्तु का धर्म कहलाता है। आत्मा का गुण चैतन्य है। चैतन्य का अर्थ है—चेतना युक्त होना। शरीर में जो चेतना दिखाई देती है वह आत्मा के कारण है। यदि आत्मा न रहे तो इस शरीर का कोई मूल्य नहीं है।